## 1965G Nisihiyan or Nashian: Word Origin

*Nishihiyan ya Nashian* (In Babu Chotelal Smrati Granth, 1965??)

# निसीहिया या नशियाँ

हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री, ब्यावर

जैन समाज को छोड़ कर अन्य किसी भी समाजमें 'निसीहिया या नशियां' यह नाम सुनने में नहीं आया और न जैन साहित्य को छोड़ कर अन्य भारतीय साहित्य में ही यह नाम देखने को मिलता है। इससे विदित होता है कि यह जैन समाज की ही एक खास चीज है।

जैन शास्त्रों के आलोडन से ज्ञात होता है कि 'नशियां' का मूलमें प्राकृत रूप 'णिसीहिया या णिसीधिया' रहा है। इसका संस्कृत रूप कुछ आचार्यों ने निषीधिका और कुछ ने निषिद्धिका किया है। कहीं कहीं पर 'निषद्या' रूप भी देखने में आता है, पर वह बहुत प्राचीन नहीं ज्ञात होता। संस्कृत और कनड़ी के अनेक शिला लेखों में निसिधि निसिदि, निषिधि, निषिदि, निसिद्धी, निसिधिग और निष्टिग रूप भी देखने को मिलते हैं, जो कि प्राकृत निसीहिया या णिसीहिया के अपभ्रंश या संक्षिप्त रूप हैं और उसीका रूपान्तर आज 'नशियां' नाम से व्यवहृत हो रहा है।

मालवा, राजस्थान, उत्तर तथा दक्षिण भारत के अनेक स्थानों पर निसिही या नशियां आज भी पाई जाती हैं। यह नगरसे बाहिर किसी एक भाग में होती है। वहां किसी साधु, यति या भट्टारक आदि का समाधि स्थान होता है, जहां पर कहीं चौकोर चबूतरा बना होता है; कहीं पर उस चबूतरे के चारों कोनों पर चार खम्भे खड़े कर ऊपर को गुम्बजदार छतरी बनी पाई जाती है और कहीं कहीं छह पाल या आठ पालदार या गोल चबूतरे पर छह या आठ खम्भे खड़े कर गोल गुम्बज बनी हुई देखी जाती है। इस समाधि स्थान पर कहीं चरण चिह्न, कहीं चरण पादुका और कहीं सांथिया बना हुआ दृष्टि-गोचर होता है। कहीं कहीं पर इन उपर्युक्त बातों में से किसी एक के साथ पीछे के लोगों ने मन्दिर भी बनवा दिये हैं और अपने सुभीते के लिए बगीचा, कुआ, बावड़ी एवं धर्मशाला आदि भी बना लिए हैं। दक्षिण प्रान्त की अनेक निसिदियों पर शिलालेख भी पाये जाते हैं, जिनमें समाधिमरण करनेवाले महापुरुष के जीवन का बहुत कुछ परिचय लिखा मिलता है। उत्तर प्रान्तमें देवगढ़ क्षेत्र पर भी ऐसी शिलालेख युक्त अनेक निषाधिकाएं आज भी विद्यमान हैं। इतना होने पर भी आश्चर्य की बात है कि लोग अभी तक यह भी नहीं जान पाये हैं कि यह निसीहिया या नशियां क्या वस्तु है और इसका प्रचलन या प्रारम्भ कबसे और क्यों हुआ है?

इस प्रश्न की ओर सबसे प्रथम मेरा ध्यान आज से १५ वर्ष पूर्व स्व० श्रीमान् बा० छोटे लालजी ने खींचा, जब उन्होंने उड़ीसा प्रान्त स्थित उदयगिरि पर उत्कीर्ण कलिंग देशाधिपति महाराज खारवेल के शिलालेख को बताकर उसमें आये 'निसीदिया' पद का अर्थ पूछा।

उक्त शिलालेख बहुत विस्तीर्ण सोलह पंक्तियों में उत्कीर्ण है। उसकी चौदहवीं और पन्द्रहवी पंक्ति में निसीदिया पद आया है। वे दोनो पंक्तियां इस प्रकार है—

पंक्ति १४—तेरसमे च वसे सुपवत चक कुमारी पवते अरहयते पवखीण सं (सि) तेहि काय

निसीहियाय या पज्ञा वके हि राज मिति निचिन वतानि वास वा ( ा ) स ( ि ) तानि पूजानुरत उवास (ग) (खा) रवेल सिरिना जीव देह (सिरि) का परि खिता—

पंक्ति १५—सुव्रता समण सुविहि तानम् । अरहत-निसीदिया समीपे पाभारे वराकार समुथा पिता हि अनेक योजना हिताहि य सि ओ····सिलाहि सिंह पथ रानी सिंधुलाय निसयानि—।

विदित हो कि भारत में अभी तक प्राप्त समस्त शिलालेखों में यह सब से पुराना अर्थात् २२०० वर्ष प्राचीन है। ब्राह्मी लिपि में लिखित होने एवं बीच-बीच में प्रस्तर-अंश खिर जाने से यद्यपि उक्त शिलालेख अभी तक ठीक तौर से पढ़ा या समझा नहीं जा सका है, फिर भी सामान्य रूप से यह तो ज्ञात हो ही जाता है कि उसमें महाराज खारवेल के राज्य-कालीन वर्षों में किये गए कार्यों का विवरण है।

ऊपर उद्धृत १४वीं और १५वीं पंक्ति में आए हुए 'अरहत' पद स्पष्ट रूप से अरिहन्त परमेष्ठी के बोधक हैं और 'निसीहिया' या निसीदिया' पद तो बहुत स्पष्ट ही अपने वाच्यार्थ को प्रकट कर रहा है।

'निसीहिया' शब्द के अनेक उल्लेख विभिन्न अर्थों में दिगम्बर और श्वेताम्बर आगमों में पाये जाते हैं। श्वे० आचारांग सूत्र (२, २, २) में आये 'निसीहिया' पद की टीका करते हुए संस्कृत छाया 'निशीथिका' कर उसका अर्थ स्वाध्याय-भूमि और भगवती सूत्र ( १४–१० ) में अल्पकाल के लिए गृहीत स्थान किया गया है। समवायांग सूत्र में 'निसीहिया' की संस्कृत छाया 'नैषेधकी' कर उसका अर्थ स्वाध्याय भूमि, प्रतिक्रमण सूत्र में–पाप क्रिया का त्याग, स्थानांग सूत्र में–व्यापारान्तर के निषेधरूप समाचारी आचार, वसुदेवहिण्डि में–मुक्ति, मोक्ष, श्मसानभूमि, तीर्थंकर या सामान्य केवली का निर्वाण–स्थान, स्तूप और समाधि अर्थ किया गया है। आवश्यक चूर्णि में–शरीर, वसतिका (साधुओं के रहने का स्थान और स्थण्डिल अर्थात् निर्जीव भूमि) अर्थ किया गया है।

गौतम-गणधर-ग्रंथित माने जाने वाले दिगम्बर प्रतिक्रमण सूत्र में णिसीहियाओं की वन्दना करते हुए—

**'जाओ अण्णाओ काओ वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि'** यह पाठ आया है-अर्थात् इस जीवलोक में जितनी भी निषीधिकाएँ हैं, उन्हें नमस्कार है।

उक्त प्रतिक्रमण सूत्र के संस्कृत टीकाकार आ० प्रभाचन्द्र ने—जो कि प्रमेयकमल मार्तण्ड, न्याय-कुमुदचन्द्र जैसे अनेक दार्शनिक ग्रन्थों के रचयिता और समाधितंत्र, रत्नकरण्डक, आदि अनेक ग्रन्थों के टीकाकार हैं–निषीधिका के अनेक अर्थों का उल्लेख करते हुए अपने कथन की पुष्टि में कुछ प्राचीन गाथाएं उद्धृत की हैं, जो इस प्रकार हैं—

जिण-सिद्धबिंब-णिलया किदगाकिदगोय
रिद्धिजुद साहू।

णाण जुदा मुणि-पवरा
णाणुप्पत्तीय णाणुजुद खेत्तं ॥१॥
सिद्धाय सिद्धभूमी सिद्धाण समासिओ णहो देसो।
सम्मत्तादिचउक्कं उप्पण्णं जेसु तेहिं सिदखेत्तं ॥२॥
चत्तं तेहिं य देहं तट्ठविदं जेसु ता णिसीहाओ।
जेसु विसुद्धा जोगा जोगधरा जेसु संठिया सम्मं ॥३॥
जोग परिमुक्क देहा पंडियमरणट्ठिदा णिसीहाओ।
तिविहे पंडियमरणे चिट्ठंति महामुणी समाहीए ॥४॥
एदाओ अण्णाओ णिसीहियाओ सया वंदे।

अर्थात्—कृत्रिम और अकृत्रिम जिन-बिम्ब, सिद्ध-प्रतिबिम्ब, जिनालय, सिद्धालय, ऋद्धि-संपन्न साधु, तत्सेवित क्षेत्र, अवधि, मनःपर्यय और केवल

ज्ञान के धारक मुनिप्रवर, इन तीनों ज्ञानों के उत्पन्न होने के प्रदेश, भक्त ज्ञानियों से आश्रित क्षेत्र, सिद्ध भगवान, निर्वाण क्षेत्र, सिद्धों से समाश्रित सिद्धालय, सम्यक्त्व आदि चार आराधनाओं से युक्त तपस्वी, उक्त आराधकों से आश्रित क्षेत्र, आराधक या क्षपक के द्वारा छोड़े गये शरीर के आश्रयवर्ती प्रदेश, योगस्थित तपस्वी, तदाश्रित क्षेत्र, योगियों के द्वारा उन्मुक्त शरीर के आश्रित प्रदेश, भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन इन तीन प्रकार के पंडित मरण में स्थित साधु, तथा पंडित मरण जहां पर हुआ है ऐसे क्षेत्र, ये सब णिसीहिया या निषीधिका पद के वाच्य हैं।

'निसीहिया' पद के इतने अर्थ करने के अनन्तर आ० प्रभाचन्द्र लिखते हैं—

अन्ये तु 'णिसीधियाए' इत्यस्यार्थमित्थं व्याख्यानयन्ति—

णि त्ति णियमेण जुत्तो सित्तिय
सिद्धि तहा अहिग्गामी।
धि त्तिय धिदिबद्धकओ
एत्तिय जिण सासणे भत्तो॥

अर्थात् कुछ लोग 'निसीधिया' पद के एक-एक शब्द को लेकर इस प्रकार अर्थ करते हैं—नि–जो व्रतादिके नियम से युक्त हो, सि–जो सिद्धि को प्राप्त हो, या सिद्धि पाने के अभिमुख हो; धि–जो धृति अर्थात् धैर्य से बद्ध-कक्ष हो, और 'या' अर्थात् जिनशासन का भक्त हो। इन गुणों से युक्त पुरुष 'णिसीधिया' पद का वाच्य है।

साधुओं के दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में 'निषिद्धिका दंडक' नामसे एक पाठ है उसमें णिसीहिया या निषिद्धिका की वन्दना की गई है। 'णिसीहिया' किस का नाम है और उसका मूल में क्या रूप रहा है, इस पर उससे बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। पाठकों की जानकारी के लिए उसका कुछ आवश्यक अंश यहां दिया जाता है—

'णमो जिणाणं ३। णमो णिसीहियाए ३। णमोत्थु दे अरहंत-सिद्ध-बुद्ध-णीरय-णिम्मल······ गुणरयण सीलसायर अणंत अप्पमेय महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धि रिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे।
(क्रियाकलाप पृ० ५५)

अर्थात्—जिनों को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो निषीधिका को तीन बार नमस्कार हो। अरहंत, सिद्ध, बुद्ध आदि अनेक विशेषण-विशिष्ट महान् महावीर वर्धमान बुद्धिऋषि को तीन बार नमस्कार हो।

इससे आगे का पाठ है—

× × × सिद्धिणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओ वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरियाणं णिम्मलाणं गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पवत्ति-थेर-कुलयराणं चाउव्वण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु··················भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण···इत्यादि। (क्रिया कलाप पृ० ५६)

अर्थात्—अष्टापद, सम्मेदाचल, ऊर्जयन्त, चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमापुरी और हस्तिपालित की सभा में, तथा जीव लोक में जितनी भी अन्य सिद्ध निषीधिकाएं और सामान्य निषीधिकाएं हैं; तथा ईषत्प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वीतल के अग्र भाग पर स्थित सिद्ध, बुद्ध, कर्म चक्र से विमुक्त, नीराग, निर्मल, सिद्धों की; तथा गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थाविर, कुलकर [ गणधर ] और चार प्रकार के श्रमण संघ की जो पांच महाविदेहों में, दश भरत और दश ऐरावत क्षेत्रों में जो भी निषिद्धिकाएं हैं, उन्हें तीन बार नमस्कार हो।

इन दोनों उद्धरणों से एक बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि निषीधिका उस स्थान

का नाम है, जहां से महामुनि कर्मों का क्षय करके निर्वाण को प्राप्त करते हैं और जहां पर आचार्य उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, कुलकर एवं ऋषि, मुनि, यति अनगार रूप चार प्रकार के श्रमण समाधिमरण करते हैं, वे सब निषीधिकाएं कहलाती हैं।

बृहत्कल्प सूत्र निर्युक्ति में निषीधिका को उपाश्रय या वसतिका का पर्यायवाची कहा गया है। यथा —

अवसग पडिसगसेज्जा आलय वसधी णिसीहिया ठाणे।
एगट्ठ वंजणाई उवसग वगडा य निक्खेवो ॥३२९५॥

अर्थात्—उपाश्रय, प्रतिश्रय, शय्या, आलय, वसति, निषीधिका और स्थान ये सब एकार्थक नाम हैं।

इस गाथा के टीकाकार ने निषीधिका का अर्थ इस प्रकार किया है—

"निषेधः गमनादिव्यापारपरिहारः, स प्रयोजनमस्याः, तमर्हतीति वा नैषेधिकी।"

अर्थात्—गमनागमनादि कायिक व्यापारों का परिहार कर साधु जन जहां निवास करें उसे निषीधिका कहते हैं।

इससे आगे कल्पसूत्र निर्युक्ति की गाथा नं. ५५४१ में भी 'निसीहिया' का वर्णन आया है, परन्तु वहां पर उसका अर्थ उपाश्रय न करके समाधिमरण करने वाले क्षपक साधु के शरीर को जहां छोड़ा जाता है, या दाह-संस्कार किया जाता है, उसे निसीहिया या निषिद्धिका कहा गया है। यहां पर टीकाकार ने 'नैषेधिक्यां शवप्रतिष्ठापनभूम्याम्' ऐसा स्पष्ट अर्थ किया है। जिसकी पुष्टि आगे की गाथा नं० ५५४२ से भी होती है।

भगवती आराधना में—जो कि दिगम्बर सम्प्रदाय का अति प्राचीन ग्रन्थ है-वसतिका से निषीधिका को सर्वथा भिन्न अर्थ में लिया है। साधारणतः जिस स्थान पर साधुजन वर्षाकाल में रहते हैं, अथवा विहार करते हुए जहां रात्रि में बस जाते हैं, उसे वसतिका कहा है। वसतिका का विस्तृत विवेचन करते हुए लिखा है—

"जिस स्थान पर स्वाध्याय और ध्यान में कोई बाधा न हो, स्त्री, नपुंसक, नाई, धोबी, चाण्डाल, आदि नीच जनों का सम्पर्क न हो, शीत और उष्ण की बाधा न हो, एक दम बन्द या खुला स्थान न हो, अन्धेरा न हो, भूमि विषम नीची ऊंची न हो, विकलत्रय जीवों की बहुलता न हो, पंचेन्द्रिय पशु-पक्षियों और हिंसक जीवों का संचार न हो। तथा जो एकांत, शांत, निरुपद्रव और निर्व्याक्षेप स्थान हो, ऐसे उद्यान-गृह, शून्य-गृह, गिरि-कन्दरा और भूमि गुहा आदि स्थान में साधुओं को निवास करना चाहिए। ऐसी वसतिकाएं उत्तम मानी गई हैं।

[ देखो–भग० आराधना गा० २२८-२३०, ६३३-६४१ ]

परन्तु वसतिका से निषीधिका बिल्कुल भिन्न होती है। इसका वर्णन भगवती आराधना में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में किया गया है और बतलाया गया है कि जिस स्थान पर समाधिमरण करने वाले क्षपक के शरीर का विसर्जन या अन्तिम संस्कार किया जाता है, उसे निषीधिका कहते हैं। यथा—निषीधिका-आराधक शरीर स्थापनास्थानम्।

[ गा० १९६७ की मूलाराधना टीका ]

साधुओं को वहां आदेश दिया गया है कि वर्षाकाल प्रारम्भ होने के पूर्व ही चतुर्मास-स्थापन के साथ ही निषीधिका-योग्य भूमि का अन्वेषण और प्रतिलेखन कर लेवें। यदि कदाचित् वर्षाकाल में किसी साधु का मरण हो जाय और निषीधिका योग्य भूमि पहले से न देख रखी हो, तो वर्षाकाल में उसे ढूंढने के कारण हरितकाय और त्रस जीवों की विराधना संभव है, क्योंकि वर्षा ऋतु में उक्त जीवों से सभी भूमि आच्छादित हो जाती है। अतः वर्षावास के साथ ही निषीधिका का अन्वेषण और प्रति लेखन करना आवश्यक हैः—

भागवती आराधना की वे सब गाथाएं इस प्रकार हैं—

एवं कालगदस्स दु शरीरमंतो बहिज्ज वाहिं वा ।
विज्जाविच्चकरा तं सयं विकिंचंति जदणाए ।।१९६६।।
समणाणं ठिदिकप्पो वासवासे तहेव उडुबन्धे ।
पडिलिहिदव्या णियमा णिसीहिया सव्वसाधूहिं ।।
१९६७।।

एगंता सालोगा णादिविकिट्ठा ण चावि आसण्णा ।
वित्थिण्णा विद्धत्ता णिसीहिया दूरमागाढा।।१९६८।।
अभिसुआ असुसिरा अघसा
उज्जोवा बहुसमा य असिणिद्धा ।
णिज्जंतुगा अहरिदा अविला य तहा अणावाधा ।।
१९६९।।

जा अवर दक्खिणाए व दक्खिणाए व अध व अवराए ।
वसधीदो वण्णिज्जदि णिसीधिया सा पसत्थ त्ति ।।
१९७०।।

अर्थात्—इस प्रकार समाधि के साथ काल-गत हुए साधु के शरीर को वैयावृत्त्य करने वाले साधु नगर से बाहर स्वयं ही यतना के साथ प्रति-ष्ठापन करें। साधुओं को चाहिए कि वर्षावास के वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में निषीधिका का नियम से प्रतिलेखन कर ले, वही क्षमणों का स्थितिकल्प है। वह निषीधिका कैसी भूमि में हो, इसका वर्णन करते हुए कहा गया है—वह एकान्त स्थान में हो, प्रकाश-युक्त हो, वसतिकासे न बहुत दूर हो, न बहुत पास हो, विध्वस्त या खण्डित न हो, दूर तक जिसकी भूमि दृढ़ या ठोस हो, दीमक चींटी आदि से रहित हो, छिद्र-रहित हो, घिसी हुई या नीची-ऊंची न हो, सम-स्थल हो, उद्योतवती हो, स्निग्ध या चिकनी फिसलने वाली भूमि न हो, निर्जन्तुक हो, हरित काय से रहित हो, बिलों से रहित हो, गीली या दल-दल युक्त न हो, और मनुष्य-तिर्यंचा-दिकी बाधा से रहित हो। वह निषीधिका वस-तिका से नैऋत्य, दक्षिण, या पश्चिम दिशा में प्रशस्त मानी गई है।

इससे आगे भगवती आराधना कार ने विभिन्न दिशाओं में होनेवाली निषीधिकाओं के शुभाशुभ फल का वर्णन इस प्रकार किया है—

यदि वसतिका से निषीधिका नैऋत्य दिशा में हो, तो साधु-संघ में शान्ति और समाधि रहती है। दक्षिण दिशा में हो तो संघ को आहार सुलभता से मिलता है। पश्चिम दिशा में हो तो संघ का विहार सुख से होता है और उसे ज्ञान एवं संयम के उपकरणों का लाभ होता है। यदि निषीधिका आग्नेय कोण में हो तो संघ में स्पर्धा अर्थात् तू-तू मैं-मैं होती है। वायव्य दिशा में हो तो संघ में कलह उत्पन्न होता है। उत्तर दिशा में हो तो संघस्थ जनों में व्याधि उत्पन्न होती है। पूर्व दिशा में हो तो परस्पर में खींचातानी होती है और संघ में भेद पड़ जाता है। ईशान दिशा में हो तो किसी अन्य साधु का मरण होता है।

(भग० आराधना गाथा–१९७१–१९७३)

इस विवेचन से वसतिका और निषीधिका का भेद बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। ऊपर उद्धृत गाथा नं० १९७० में यह साफ शब्दों में कहा गया है कि वसतिका से दक्षिण, नैऋत्य और पश्चिम दिशा वाली निषीधिका प्रशस्त मानी गई है। यदि निषीधिका वसतिका का ही पर्यायवाची नाम होता, तो ऐसा पृथक् वर्णन क्यों किया जाता।

प्राकृत 'णिसीहिया' या 'निसीहिया' का अपभ्रंश रूप ही आज निसी, निसिदि, नसिया और नशियां के रूप में व्यवहृत होने लगा है।

आज-कल लोग जिन-मन्दिर में प्रवेश करते हुए 'ओं जय जय जय, निस्सही निस्सही निस्सही, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु, पाठ बोलते हैं। यहां बोले जाने वाले 'निस्सही' पद से क्या अर्थ अभिप्रेत था और आज लोगों ने उसे किस अर्थ में ले रखा है, यह भी एक विचारणीय बात है। कुछ लोग

इसका अर्थ करते हैं कि 'यदि कोई देवादिक भगवान के दर्शन पूजनादि कर रहा हो, तो वह दूर हट जाय, या एक ओर हो जाय' पर देव दर्शन के लिए मन्दिर में प्रवेश करते हुए तीन बार 'निस्सही' बोलकर 'नमोऽस्तु' बोलने का यह अभिप्राय नहीं रहा है। किन्तु जैसा कि 'निषिद्धिका-दंडक' का उद्धरण देकर ऊपर बतलाया जा चुका है कि 'निसीहिया या निषिधिका' का अर्थ जिन, जिन-बिम्ब, सिद्ध, सिद्ध-बिम्ब होता है। तदनुसार दर्शन करनेवाला तीन बार 'निस्सही-जो कि णिसीहियाए' का संक्षिप्त या अपभ्रंश रूप हैं—को बोलकर उसे तीन बार नमस्कार करता है। यथार्थ में हमें मन्दिर में प्रवेश करते समय णमो णिसीहियाए' या इसका संस्कृत रूप 'निषीधिकायै नमोऽस्तु,' अथवा 'णमोत्थु णिसीहियाए' पाठ बोलना चाहिए।

यहां यह शंका की जा सकती है कि फिर यह अर्थ कैसे प्रचलित हुआ —कि यदि कोई देवादिक दर्शन-पूजन कर रहा हो, तो वह दूर हो जाय? मेरी समझ में इसका कारण निःसही या निस्सही' जैसे अशुद्ध पदके मूल रूप को ठीक तौर से न समझ सकने के कारण निर् उपसर्ग पूर्वक सृ गमनार्थक धातुका आज्ञा के मध्यम पुरुष-एकवचन का बिगड़ा रूप मानकर लोगों ने वैसी कल्पना कर ली है। अथवा दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि किसी नवीन स्थान में प्रवेश करने या वहां से जाने के समय साधुओं को निसीहिया और आसिया करने का विधान है। उसकी नकल करके लोगों ने मन्दिर-प्रवेश के समय बोले जानेवाले 'निसीहिया' पदका भी वही अर्थ लगा लिया है।

साधुओं के १० प्रकार के[1] समाचारों में निसीहिया और आसिया नाम के दो समाचार हैं। उनका वर्णन मूलाचार में इस प्रकार किया गया है—

कंदर-पुलिण-गुहादिसु पवेसकाले णिसिद्धियं कुज्जा।
तेहितो णिग्गमणे तहासिया होदि कायव्वा ॥१३४॥
(समाचारी अधिकार)

अर्थात्—गिरि-कन्दरा, नदी आदि के पुलिन (मध्यवर्त्ती जल-रहित स्थान, और गुफा आदि में प्रवेश करते हुए निषिद्धिका समाचार करे, और यहां से निकलते या जाते समय आशिका समाचार करे। इन दोनों समाचारों का अर्थ टीकाकर आ० वसुनन्दी ने इस प्रकार किया है—

टीका—"पविसंते य प्रविशति च प्रवेशकाले णिसिही निषेधिका तत्र स्थानमभ्युपगम्य स्थान करणम्, सम्यग्दर्शनादिषु स्थिरभावो वा। णिग्गमणे निर्गमनकाले आसिया देव-गृहस्थादीन् परिपृच्छ्य यानंम्, पापक्रियादिभ्यो मनोनिवर्तनं वा।"

अर्थात्—साधु जिस स्थान में प्रवेश करें, उस स्थान के स्वामी से आज्ञा लेकर प्रवेश करें। यदि उस स्थान का स्वामी कोई मनुष्य है; तो उससे पूछें। और यदि मनुष्य नहीं हैं, तो उस स्थान के अधिष्ठाता देवता को सम्बोधन कर उससे पूछें। इसी का नाम निसीहिका समाचार है। इसी प्रकार उस स्थान से जाते समय भी उसके स्वामी मनुष्य या क्षेत्रपाल देव को पूछकर और उसका स्थान उसे संभलवा करके जावें। यह उनका आसिका समाचार है। अथवा करके इन दोनों पदों का टीकाकार ने एक दूसरा भी अर्थ किया है। वह यह कि विवक्षित स्थान में प्रवेश करके सम्यग्दर्शनादि में स्थिर होने का नाम निसीहिया और पाप-क्रियाओं से मन के निवर्तन का नाम आसिया है।

आचार सार के कर्त्ता आ० वीरनन्दीने उक्त दोनों समाचारों का इस प्रकार वर्णन किया है—

जीवानां व्यन्तरादीनां बाधायै यन्निषेधनम्।
अस्माभिः स्थीयते युष्मद्दिष्टचै वेति
निषिद्धिकाम् ॥११॥

१. साधुओं का अपने गुरू या अन्य साधुओं के साथ जो पारस्परिक शिष्टाचार का व्यवहार होता है, उसे समाचार कहते हैं।

प्रवासावसरे कन्दरावासादेर्निषिद्धिका ।
तस्मान्निर्गमने कार्या स्यादाशीर्वैर हारिणी ॥१२॥
(आचारसार० द्वि० अ०)

अर्थात् व्यन्तरादिक जीवों की बाधा दूर करने के लिए जो निषेधात्मक वचन कहे जाते हैं कि भो क्षेत्रपाल यक्ष, हम लोग तुम्हारी आज्ञा से यहां निवास करते हैं तुम लोग रुष्ट मत होना, इत्यादि व्यवहार को निषिद्धिका समाचार कहते हैं। और वहां से जाते समय उन्हें वैर दूर करने वाला आशीर्वाद देना, यह आशिका समाचार है।

ऐसा ज्ञात होता है कि लोगों ने साधुओं के लिए विधान किये गये उक्त समाचारों का अनुकरण किया और "व्यन्तरादीनां बाधायै यन्निषेधनम्" पद का अर्थ मन्दिर-प्रवेश के समय भी लगा लिया कि यदि कोई व्यन्तरादिक देव दर्शनादिक कर रहा हो तो वह दूर हो जाय और हमें बाधा न दे। पर वास्तव में 'निस्सही' पद बोलने का अभिप्राय मन्दिर-प्रवेशकाल में जिन देव के स्मरण करनेवाले स्थान या उनके प्रतिबिम्ब के लिए किये जाने वाले नमस्कार का रहा है।

## उपसंहार

मूल में 'निसीहिया' पद मृत साधुओं के शरीर-प्रतिष्ठापन योग्य स्थान के लिए प्रयुक्त किया जाता था। पीछे उस स्थान पर जो स्वस्तिक, चबूतरा या छतरी आदि बनाये जाने लगे, उनके लिए भी उसका प्रयोग किया जाने लगा। मध्ययुग में साधुओं के समाधिमरण करने के लिए जो खास स्थान बनाये जाते थे, उन्हें भी निषिधि या निसीहिया कहा जाता था। कालान्तर में वहां उस साधु की चरण-पादुका आदि बनाई जाने लगीं, उसके लिए भी निसीहिया शब्द प्रयुक्त होने लगा। आज कल उस स्थान पर मन्दिर, धर्मशाला, कूप उद्यान आदि भी बनाये जाने लगे और उस समस्त स्थान को 'नशियाँ' नाम से कहा जाने लगा, जो वस्तुतः निसीहिया का ही रूपान्तर है और निशि, निसिधि उसके ही नामान्तर हैं।

—०:०:०—

"मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा क्योकि इनमें वह शक्ति है जो उसे ( नरक को भी ) स्वर्ग में बदल देगी।"

—लोकमान्य तिलक